7104

तित्थयर

वर्ष ४ अंक ७ : नवम्बर १९८०

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

PRAKASH TRADING COMPANY

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

THE BIKANER WOOLLEN MILLS

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ४ : अंक ७

नवम्बर १९८०

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७०००००७

सूची

जैन श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों की उत्पत्ति १९७

कलकत्ता के जैन मन्दिर और एक विस्मृत शिल्पी २०६

श्रीपाल २१३

जीव २१८

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २२३

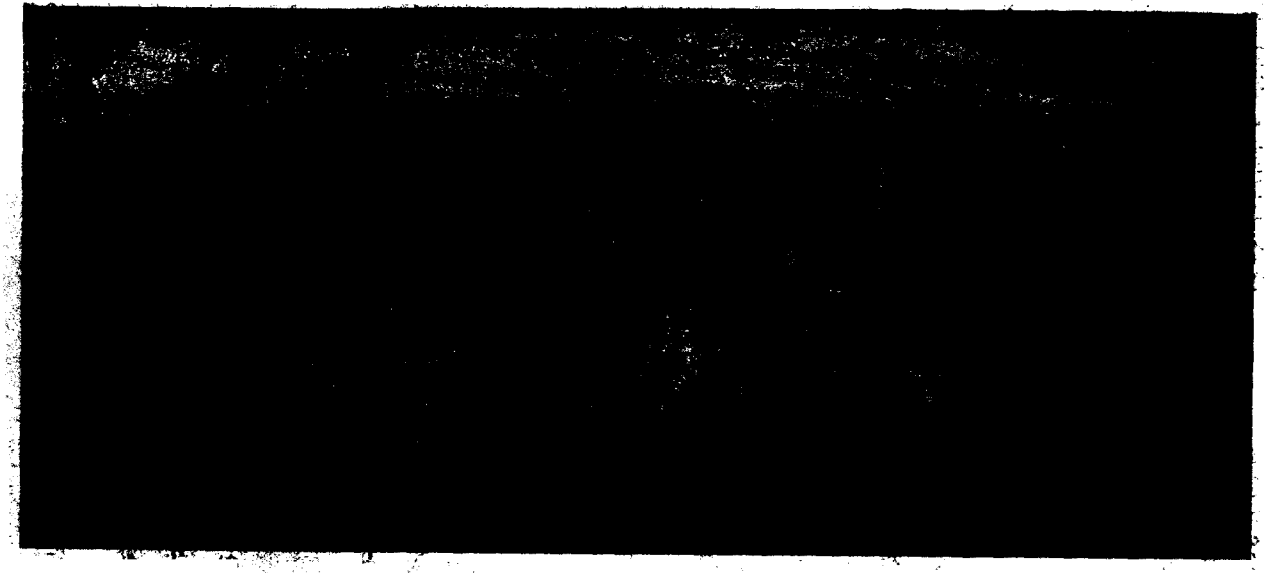

कार्तिक महोत्सव पर निकलनेवाला शुलूस, कलकत्ता, शिल्पी गणेश सुसव्वर

जैन श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों की उत्पत्ति

—पूरणचंद सामसुखा

दिगम्बर सम्प्रदाय का कथन है कि मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने भद्रबाहु का शिष्यत्व अंगीकार कर श्रमण धर्म अवलम्बन किया एवं द्वादश वर्ष के दुर्भिक्ष के समय भद्रबाहु के साथ दाक्षिणात्य प्रदेश में गमन कर कटवप्र पर्वत में (श्रवण बेलगुल के चन्द्रगिरि पर्वत में) देहत्याग किया। भगवान् महावीर के ६० वर्ष बाद नन्दवंश का राज्यारम्भ हुआ एवं नन्दगणों ने[1] १५५ वर्ष शासन किया। नन्दवंश ध्वंस होने के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य पाटलिपुत्र के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। अतः चन्द्रगुप्त की राज्य प्राप्ति ६०+१५५=२१५ वीर निर्वाणाब्द या ३१२ खृष्टपूर्व में हुई थी। चन्द्रगुप्त ने २४ वर्ष राज्य भोग किया। अतः उनका मृत्यु समय या राज्यत्याग समय खृष्टपूर्व २८८ है। किन्तु भद्रबाहु को स्वर्गप्राप्ति दिगम्बर मतानुसार महावीर के २६२ वर्ष बाद या ३६५ खृष्टपूर्व में और श्वेताम्बर मतानुसार ३५७ खृष्टपूर्व में हुई थी। अतः भद्रबाहु एवं चन्द्रगुप्त कैसे समसामयिक हो सकते हैं? श्रवण बेलगुल की कई एक शिलालिपियों में एवं दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थादि में भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त का नाम जिस ढंग से लिखा गया है उससे यही मालूम होता है कि वे दोनों समसामयिक थे, किन्तु वास्तव में पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहु और मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में प्रायः ८० वर्ष का प्रभेद है। अतः यह स्वीकार करना होगा कि जिन भद्रबाहु ने चन्द्रगुप्त के साथ दाक्षिणात्य में गमन किया था, वे पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहु नहीं थे। एवं उनके पास जिस चन्द्रगुप्त ने दीक्षा ग्रहण की थी वह मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त नहीं था। श्रवण बेलगुल की प्रधान तथा सर्व प्राचीन शिलालिपि ही उस सिद्धान्त का परिपोषक है। इस शिलालिपि में[2] उक्त है कि "भगवत् परमर्षि गौतम - गणधर साक्षाच्छिष्य - लोहार्य जम्बु - विष्णुदेव - अपराजित-गोवर्धन-भद्रबाहु-विशाख-

---

[1] तित्थोगाली पइन्नय।

[2] जैन शिलालेख संग्रह—माणिकचन्द दिगम्बर ग्रन्थमाला का २८ वां ग्रन्थ। चन्द्रगिरि पर्वत का लेख नं० १। Inscriptions of Chandragiri, *Epigraphia Carnatica*, Vol. II. इस शिलालिपि का समय शकाब्द ५२२ (६०० ई०)।

प्रोष्टिल - क्षत्रिकार्य - जयनाम - सिद्धार्थ - धृतषेण - बुद्धिलादिगुरु परम्परीण क्रमाभ्यागत महापुरुष सन्तति भद्रबाहु स्वामीना उज्जयिन्याम् अष्टांग महानिमित्त तत्वज्ञेन अकालवर्दिना निमित्तेन द्वादश सम्वत्सर काल-वैषम्य मुपलभ्य कथिते सर्वसंघउत्तरापथात् दक्षिणापथं प्रस्थितः"""""इत्यादि ।

इस शिलालिपि में गौतम से लगाकर बुद्धिलाचार्य तक आचार्यों का नाम दिया हुआ है (यद्यपि प्रचलित दिगम्बर पट्टावली में दिए हुए नामों के साथ इसका सम्पूर्ण रूप से ऐक्य नहीं है) एवं उनके परम्परा आगत महापुरुष सन्तति भद्रबाहु स्वामी ने द्वादशवर्ष व्यापी दुर्भिक्ष होगा, ऐसा जान कर सर्वसंघ के साथ उत्तरापथ से दक्षिणापथ में प्रस्थान किया ऐसा लिखित है। इसी से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह भद्रबाहु पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहु नहीं थे बल्कि बुद्धिलाचार्य के बहुत बाद आविर्भूत हुए निमित्त-शास्त्रज्ञ दूसरे भद्रबाहु थे। शिलालिपि में गौतमादि के नाम के साथ प्रधान भद्रबाहु का नाम यथास्थान सन्निवेशित है एवं उसके बाद बुद्धिलाचार्य पर्यन्त दिगम्बर आचार्यों का नाम देकर "आदि" शब्द का प्रयोग किया गया है एवं उनके परम्परा से आगत जो भद्रबाहु हुए थे, वे ही दक्षिणापथ में गये थे, ऐसा कथित है। अतः यह भद्रबाहु स्वामी प्रथम भद्रबाहु नहीं हो सकते। दिगम्बर पट्टावली में बुद्धिलाचार्य को १७ वें आचार्य के रूप में एवं द्वितीय भद्रबाहु को २७वें[३] आचार्य के रूप में पाया जाता है। इस हालत में इस बात में कोई भी सन्देह नहीं रह जाता कि यह द्वितीय भद्रबाहु ही उज्जैन छोड़कर दक्षिणापथ में गये थे। यदि वे प्रथम भद्रबाहु होते तो उनके परवर्ती आचार्यों का नामोल्लेख कर उनको उन सबके परम्पराक्रम आगत नहीं कहा जाता।

दिगम्बरगण यह भी कहते हैं कि भद्रबाहु स्वामी के साथ विशाखाचार्य ने भी दाक्षिणात्य में गमन किया था एवं भद्रबाहु के "कटवप्र" पर्वत में समाधि मरण के लिये रह जाने से विशाखाचार्य अन्य साधुओं को लेकर और भी दक्षिण में चोल-पाण्डय देश में[४] चले गये। द्वितीय भद्रबाहु के पट्ट में गुप्तिगुप्त[५] आचार्य का नाम हमें मिलता है। इन गुप्तिगुप्त के और भी दो नाम थे अर्हद्बली[६] ९वें विशाखाचार्य। अतः भद्रबाहु के साथ जिन विशाखाचार्य ने दाक्षिणात्य प्रदेश

---

[३] तत्वार्थाधिगम सूत्र, जे० एल० जैनी, हिस्टोरिकल इन्ट्रोडक्शन, पृ० ६।
[४] जैन सिद्धान्त भास्कर, किरण, १, पृ० १२-१३।
[५] तत्वार्थाधिगम सूत्र, जे० एल० जैनी, हिस्टोरिकल इन्ट्रोडक्शन, प० ६।
[६] जैन सिद्धान्त भास्कर, किरण, ४, पृ० ६६।

में गमन किया, वे यही अर्हद्बली आचार्य थे। प्रकृत पक्ष में बात यही है कि दिगम्बर गणों का इतिहास इन द्वितीय भद्रबाहु एवं अर्हद्बली आचार्य से ही आरम्भ हुआ है। अर्हद्बली आचार्य के समय से ही दिगम्बर सम्प्रदाय चार संघ[७] या विभागों में विभक्त हुआ। इन विभागों के नाम ये थे—१ नन्दीगण, २ सेनगण, ३ सिंहगण ४ देवगण। द्वितीय भद्रबाहु के पहिले जिन आचार्यों के नाम लिखे हुए हैं इन्हें पौराणिक व्यक्ति के अलावा और कुछ नहीं कह सकते।

पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के समय में जो द्वादशवर्ष व्यापी दुर्भिक्ष हुआ श्वेताम्बरगण भी स्वीकार करते हैं। उनके मत से इस दुर्भिक्ष के समय भद्रबाहु स्वामी हिमालय चले गये एवं वहाँ से फिर पाटलीपुत्र नहीं लौटे। दुर्भिक्ष के शेष होने से स्थूलभद्र ने उनके समीप आकर "पूर्व" शास्त्र अध्ययन किया। भद्रबाहु वीराब्द १३० वर्ष में देवलोक प्राप्त हुए, वह नन्दवंश के शासन का समय था। अतः यह दुर्भिक्ष नन्दवंश के शासनकाल में हुआ। मौर्यगण प्रबल प्रतापी थे। उनका राज्य भी बहुत विस्तृत था। यदि राजधानी के चारों तरफ दुर्भिक्ष होता तो वे अन्यान्य स्थान से खाद्य मंगाकर थोड़े ही दिनों में दुर्भिक्ष निवारण कर सकते थे एवं १२ वर्ष तक दुर्भिक्ष भी न रहता। किन्तु नन्दवंश के राज्य के शेष समय में वे हीनबल हो गये थे। दूसरे राज्यों से शस्य मंगाकर घोर दुर्भिक्ष निवारण करने की क्षमता उनमें नहीं थी अतः दुर्भिक्ष भी बहुवर्ष व्यापी हो गया एवं उसके फलस्वरूप वे भी हीनबल हो गये। मौर्य चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य जो इतनी सामान्य चेष्टा से ही नन्दवंश के उच्छेद साधन करने में समर्थ हुए थे उसका यह भी एक प्रधान कारण है ऐसा अनुमान किया जाता है। अतः दिगम्बरगण प्रदत्त दुर्भिक्ष का विवरण यथार्थ नहीं है। हम पहले यह प्रतिपन्न कर चुके हैं कि प्रथम भद्रबाहु दक्षिणापथ में नहीं गये थे बल्कि द्वितीय भद्रबाहु गये थे। दिगम्बरगणों के शास्त्रों से यह मालूम होता है कि भद्रबाहु के समय जो दुर्भिक्ष हुआ था, वह उज्जैन निकटवर्ती स्थान में मध्यप्रदेश में[८] उत्कट रूप से हुआ था। अतः यह निश्चित रूप से प्रमाणित होता है कि यह दुर्भिक्ष पाटलीपुत्र का पहला दुर्भिक्ष नहीं था परन्तु परवर्ती काल का मध्यप्रदेश में होने वाला कोई दुर्भिक्ष था एवं इसलिये द्वितीय भद्रबाहु ने ही साधु संघ के साथ दाक्षिणात्य में प्रस्थान किया था एवं चन्द्रगुप्त नामक कोई एक राजा ने भी श्रमण दीक्षा अवलम्बन कर उनका साथ दिया था। इस दुर्भिक्ष तथा दक्षिणापथ में साधु संघ के प्रस्थान के साथ जैन समाज के

---

[७] जैन सिद्धान्त भास्कर, किरण ४, पृ० ६६-७०।

[८] भद्रबाहु चरित्र, परिच्छेद—२, श्लोक ६१, ६४, ७१ इत्यादि।

विभाग का इतिहास जड़ित है। क्योंकि जो लोग दाक्षिणात्य में गये थे वे कई एक विषयों में मूल निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय से अलाहिदा मत धारण करने लगे एवं निज का एक भिन्न सम्प्रदाय बना लिया।

उड़िष्या अन्तर्गत उदयगिरि तथा खण्डगिरि की हस्तीगुम्फा नामक गुहा में कलिंगराज जैन सम्राट् खारवेल की शिलालिपि का जो पाठोद्धार हुआ है उससे मालूम होता है कि महाराजा खारवेल ने जैन साधुओं को पट्टवस्त्र एवं श्वेत वस्त्र प्रदान किये थे। खारवेल का आनुमानिक समय २७० खृष्ट पूर्व है। अतः खृष्ट पूर्व द्वितीय शताब्दी[१] में भी वस्त्रधारी जैन साधु थे इसमें कोई सन्देह नहीं है।

दिगम्बर संप्रदाय के "जैन सिद्धान्त भास्कर" नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ के १म भाग १म किरण में "आदि पुराण" और "उत्तर पुराण" के कर्त्ता जिनसेनाचार्य (२य) तथा गुणभद्राचार्य का परिचय पट्टावली मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ है। पट्टावली में गौतमस्वामी से आरम्भ कर सेनगण के आचार्यों का नाम और कितने एक का समय दिया हुआ है। इस तालिका से यह ज्ञात होता है कि सताइसवें पट्ट में द्वितीय भद्रबाहु हुए थे एवं उसके पश्चात् लोहाचार्य एवं उनके पाट में जिनसेनाचार्य ने (१म) महावीर के ६११ वर्ष पश्चात् स्वर्गगमन किया। लोहाचार्य एवं जिनसेनाचार्य का समय बाद देने से द्वितीय भद्रबाहु का समय वीराब्द षष्ठ शताब्दी का मध्य भाग मान सकते है। श्वेताम्बर एवं दिगम्बर का विभाग वीराब्द सप्तम शताब्दी के पहिले भाग में हुआ था। अतः द्वितीय भद्रबाहु के दक्षिणापथ गमन के एक शताब्दी के बीच में उभय सम्प्रदाय सम्पूर्ण रूप से पृथक हो गये।

द्वितीय भद्रबाहु ने कटवप्र पर्वत में स्वर्ग प्राप्ति की। उनके साथ जो साधुगण दाक्षिणात्य में गये थे वे वहां ही रहकर जैन धर्म प्रचार करने लगे। प्रवीण वृद्ध साधुओं की मृत्यु के बाद अल्प वयस्क तथा नवदीक्षित साधुओं को अंग समूह की शिक्षा देने के उपयुक्त शिक्षकों का साधु संघ में अभाव होने लगा अनुमान कर सकते है। ऐसे उपयुक्त शिक्षकों के अभाव के साथ-साथ सम्प्रदाय के भीतर अंग ज्ञान लुप्त होने लगा एवं इसीलिये दिगम्बरगण कहते हैं अंग शास्त्रों का ज्ञान सम्पूर्णतया लुप्त हो गया है। मूल स्थान आर्यावर्त से सम्पूर्ण रूप से विच्छिन्न होने के कारण उनमें आचार व्यवहार तथा मान्यता

[१] श्री खारवेल प्रशस्ति और जैन धर्म की प्राचीनता, श्री युक्त काशी प्रसाद जयसवाल लिखित, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०, अंक ३, पृ० ४६६-५०२।

का भी परिवर्तन होने लगा। वीराब्द षष्ठ शताब्दी के शेष भाग में या सप्तम शताब्दी के प्रारम्भ में ही शायद उनमें से कई एक साधुओं ने आर्यावर्त में प्रत्यावर्तन कर स्वीय आचार व्यवहार के साथ आर्यावर्त निवासी साधुओं के आचार व्यवहार का यथोपयुक्त संशोधन न कर उल्टा एक अलाहिदा सम्प्रदाय गठन कर लिया। आर्यावर्त के साधुगणों के पास जो अंग शास्त्र का ज्ञान था वह स्वीकार न कर अंग शास्त्र सम्पूर्ण रूप से विलुप्त ही हो गया है ऐसा मान लिया। साधुओं को जिनकल्पी साधु की भाँति नग्न रहना होगा, स्त्रियाँ मुक्ति नहीं पा सकतीं, केवल-ज्ञानी शरीर धारण करते हुए भी आहार नहीं करते आदि कई विषयों में यह लोग पृथक मत पोषण कर धीरे-धीरे एक पृथक सम्प्रदाय की सृष्टि कर मूल निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय से अलाहिदा हो गये। यह घटना महावीर के ६०० वर्ष बाद हुई थी। किन्तु श्वेताम्बरगणों ने समय-समय पर आचार्य तथा साधुओं को एकत्रित कर अंगों का उद्धार किया था। उत्तर भारत के पाटलीपुत्र में, मथुरा में एवं अन्त में वल्लभी नगरी में भी साधु संघ ने एकत्र होकर अंगादि शास्त्रों का उद्धार किया। कलिंग राज चक्रवर्ती खारवेल ने भी साधु संघ को एकत्रित कर शास्त्रोद्धार कराया था ऐसा उनकी हस्तीगुम्फा[१०] की शिलालिपि में लिखित है। अतः श्वेताम्बरगणों के पास अंगादि प्राचीन शास्त्र अभी भी मौजूद हैं।

इस तरह से जो सम्प्रदाय मूल निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय से विच्छिन्न हो गया वह परवर्त्ती काल में नग्नत्व निबन्धन "दिगम्बर" के नाम से आख्यात होने लगा और मूल निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय श्वेतवस्त्र धारण करने के हेतु "दिगम्बर" शब्द के विपरीत "श्वेताम्बर" के नाम से अभिहित होने लगा। 'दिगम्बर' एवं 'श्वेताम्बर' इन दोनों शब्दों का उल्लेख परवर्त्ती काल के जैन साहित्य में ही पाया जाता है। दिगम्बरगण, अंग शास्त्र विलुप्त हो गया है कह कर, उनका अध्ययन न कर, नवीन शास्त्र रचना की आवश्यकता अनुभव करने लगे एवं और भी ७०-८० वर्ष बाद धरसेन आचार्य द्वारा शिक्षाप्राप्त कर पुष्पदन्त एवं भूतबली नामक दो आचार्यों ने वीराब्द ६८३ में प्रथम दिगम्बर शास्त्र रचा[११]। इस समय से पहले का कोई भी ग्रन्थ दिगम्बर सम्प्रदाय में नहीं है। द्वितीय भद्रबाहु के दक्षिणापथ जाने के काल और पुष्पदन्त एवं भूतबली द्वारा प्रथम दिगम्बर शास्त्र प्रणयन-काल के बीच प्रायः

---

[१०] हस्ती गुम्फा की खारवेल प्रशस्ति—१६ की लाइन। "मुरिय काल वोछितं च चोयठि अंग-सतिकं तुरियं उपादयति" इत्यादि।

[११] जैन सिद्धान्त भास्कर, किरण १, पृ० ५७-५८।

डेढ़ सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे। इसी समय के भीतर ही साधुओं का दक्षिणापथ में जाना, मूल निर्ग्रन्थ समाज से पृथक होना तथा प्रथम शास्त्र रचना क्रम से हुए, ऐसा मालूम होता है। इस समय के पहले की कोई प्रतिमा, शिलालेख या कोई ग्रन्थ दिगम्बर सम्प्रदाय में नहीं है। मथुरा में जो जैन मूर्त्तियां प्राप्त हुई है वे मूल निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय (जो कि पीछे श्वेताम्बर नाम से अभिहित हुआ) की है। इन मूर्त्तियों में 'उद्देहगण', 'कोटियगण'[१२] 'उच्च नागरी शाखा', प्रभृति श्वेताम्बर साधु सम्प्रदाय के 'गण' एवं 'शाखा' के नाम एवं भगवान महावीर के गर्भापहरण के चित्र मिलते हैं जो दिगम्बर सम्प्रदाय के हो ही नहीं सकते।

श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय में जिन सब विषयों पर मतभेद है उनमें कई एक प्रधान विषयों का उल्लेख कर चुके है। इन सबमें वस्त्र परिधान सम्बन्धी मतभेद ही सर्वप्रधान है। प्राचीन जैन साहित्य में भी इस मतभेद का आभास मिलता है। उत्तराध्ययन सूत्र के "केसि गोयमिज्ज" नामक तेईसवें अध्ययन में तीर्थङ्कर भगवान पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य केशिकुमार एवं भगवान महावीर के प्रथम गणधर गौतम स्वामी (इन्द्रभूति) के वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है कि केशिकुमार के द्वारा चातुर्याम धर्म के बदले पञ्चयाम धर्म तथा सचेलकत्व की जगह अचेलकत्व के प्रचार के प्रति सन्देह प्रगट किये जाने पर गौतम ने उस सन्देह का निराकरण किया। इस आलोचना से यह मालुम होता है कि पार्श्वनाथ के साधुगण वस्त्र धारण करते थे किन्तु महावीर के साधुओं में वस्त्ररहित साधु भी थे। स्वयं भगवान महावीर ने भी संसार-त्यागी होने के बाद तेरह मास तक वस्त्र धारण किया और उसके बाद अचेलक[१३] हुए। आप घोर तपस्वी एवं असाधारण सहनशक्ति सम्पन्न पुरुष थे। संसार त्याग करने के बाद तथा केवल ज्ञान प्राप्ति होने के बीच के १२ वर्ष के समय में आपने जो भयंकर कष्ट सहे उनके पढ़ने मात्र से शरीर रोमांचित हो उठता है। ऐसे घोर तपस्वी तथा कष्टसहिष्णु पुरुष साधुओं के लिये कठोर नियमों का प्रवर्त्तन करेंगे यह तो स्वाभाविक बात है।

---

[१२] The inscriptions now prove the actual existance of twenty of the sub-divisions mentioned in the *Sthaviravali* of the *Kalpasutra*. "Further proofs of the authenticity of the Jaina Tradition" by G. Buhler. *Vienna Oriental Journal*, Vol. IV. *P.* 315.

[१३] "समणे भगवं महावीरे संवच्छरं साहियं मासं जाव चीवरधारी होत्था तेण परं अचेलए पाणिपडिग्गहिए।"—कल्प सूत्र।

पार्श्वनाथ के साधु केवल वस्त्र परिधान करते थे यही बात न थी बल्कि हर एक प्रकार का वस्त्र धारण कर सकते थे। वे चतुर्थ व्रत मैथुन-विरमण के साथ पंचम व्रत परिग्रह-त्याग को अन्तर्भुक्त समझते थे। और इसीलिये चतुर्महाव्रत ही पालन करते थे। किन्तु महावीर स्वामी मैथुन-विरमण चतुर्थ महाव्रत से परिग्रह परित्याग व्रत को पृथक कर पंचम महाव्रत का अवतारण किया एवं वस्त्र परिधान के सम्बध में कठोर नियमों का प्रचलन किया। परन्तु सभी साधुओं को नग्न नहीं रहना पड़ता था। महावीर स्वामी के साधु सम्प्रदाय की संख्या भी कम न थी। कल्प सूत्र में उल्लेख है कि आर्या चन्दना आदि ३६००० साध्वियां भगवान के शासनाधीन थीं। साध्वियां वस्त्र परिधान करती थी इसमें कोई संशय नहीं है। लेकिन साधु उनके सम्मुख नग्नावस्था में विचरण करें यह सम्भव नहीं हो सकता, किन्तु नग्न साधु भी उस समय थे। इन नग्न साधुओं को "जिनकल्पी" नाम दिया गया था। एवं जो साधु वस्त्रधारी थे उनको "स्थविरकल्पी" कहा जाता था। कल्प शब्द का अर्थ आचरण है। अतः जो सब साधु जिन यानी तीर्थङ्कर सदृश आचरण करते, वे जिनकल्पी एवं जो सब साधु स्थविरों के सदृश आचरण करते वे स्थविरकल्पी कहे जाने लगे। जिनकल्पी साधु वस्त्र धारण नहीं करते थे। पानाहार के निमित्त किसी प्रकार का पात्र नहीं रखते थे, वे लोकालय में नहीं रहते थे, वन में रहकर कठोर तपस्या करते। आहार की आवश्यकता होने से सिर्फ भिक्षा के लिये लोकालय में जाते। किन्तु स्थविरकल्पी साधु वस्त्र परिधान करते और लोकालय में ही रहते। जिनकल्पी और स्थविरकल्पी इन दो आचारों का प्रवर्त्तन केशिकुमार एवं इन्द्रभूति गौतम की आलोचना के पश्चात् हुआ या इसके पहिले ही से इन दोनों आचारों का प्रचलन था इसका स्पष्ट रूप से कहीं भी उल्लेख नहीं है। किन्तु इस आलोचना के पश्चात् पार्श्वनाथ का वस्त्रधारी साधु सम्प्रदाय महावीर के सम्प्रदाय के साथ मिल गया था इसमें कोई सन्देह नहीं है।

प्रथम अङ्ग "आचाराङ्ग सूत्र" में साधु आचार एवं भगवान महावीर की संक्षिप्त जीवनी विवृत है। इस अङ्ग में साधुओं के लिये वस्त्र परिधान की व्यवस्था दी गई है। आचाराङ्ग प्रथम स्कन्ध विमोक्षाध्ययन नामक सप्तम अध्ययन के चतुर्थ, पञ्चम एवं षष्ठ उद्देशक में शीत काल के लिये तीन, दो या एक वस्त्र की व्यवस्था है किन्तु ग्रीष्म ऋतु के लिये एक वस्त्र धारण करने की या नग्न रहने की ही है। अतः यह स्पष्ट मालुम होता है कि उस समय वस्त्र व्यवस्था थी एवं साधुगण स्व स्व रुचि एवं सामर्थ्यानुसार किसी एक को

पालन करते थे। आचाराङ्ग सूत्र के द्वितीय स्कन्ध, पञ्चम अध्ययन, प्रथम उद्देशक में वस्त्र भिक्षा एवं वस्त्र ग्रहण करने के विस्तृत नियम दिये गये हैं एवं इस उद्देशक का नाम भी इसीलिये "वस्त्रैषणा" है। हम यहाँ इस उद्देशक से कुछ मूल पाठ उद्धृत करते हैं :

"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखेज्जा वत्थं एसित्तए से जं पुण वत्थं जाणेज्जा संजहा जंगियं वा भंगियं वा साणयं वा पोत्तयं वा खोमियं वा तूलकंड वा सव्वप्पगारं वत्थं से णिग्गंथे तरुणे जुगवं बलवं अप्पायं के थिरसंघयणे से एगं वत्थं धारेज्जा णो बितियं जा निग्गथी सा चत्तारि सम्घाडीओ धारेज्जा एगं दुहत्थ वित्थारं दो तिहत्थ वित्थाराओ एग चउहत्थ वित्थाराओ ए एहिं वत्थेहिं असंविज्जमाणेहिं अहः पच्छा एगमेगं संसीविज्जा। १४१।

अर्थात् साधु को जब वस्त्र का प्रयोजन हो तो वह ऊन से, रेशम से, सण से बना हुआ या ताड़ प्रभृति के पत्तों से बना हुआ वस्त्र या कपास से या आक की रुई से बना हुआ वस्त्र या इसी तरह का अन्य किसी प्रकार का वस्त्र ग्रहण कर सकता है। किन्तु जो निर्ग्रन्थ साधु तरुण, बलवान, नीरोग एवं दृढ़ शरीर विशिष्ट हो वे केवल एक वस्त्र ही धारण कर सकता है। द्विहस्त परिमाण का एक त्रिहस्त परिमाण का दो एवं चतुर्हस्त विस्तृत एक इत्यादि।

एकादश अङ्गों में कई पाश्चात्य विद्वानों के मत से प्रथम और तृतीय अंग सब से प्राचीन है। अतः इस सुप्राचीन ग्रन्थ में वस्त्र परिधान करने की विधि व्यवस्था रहने के कारण यह प्रमाणित होता है कि वस्त्र परिधान का आचार बहुत पुरातन है। और पहिले हम यह दिखा ही चुके हैं कि भगवान महावीर के समय वस्त्रधारी एवं वस्त्र रहित दोनों प्रकार के साधु थे। साधुगण अपनी रुचि और सामर्थ्यानुसार जिनकल्पी या स्थविरकल्पी का मार्ग अवलंबन करते, किन्तु वस्त्र के विषय को लेकर उनमें कभी कोई वैमनस्य नहीं हुआ। जिनकल्पी एवं स्थविरकल्पी दोनों एक ही स्थविर के शासनाधीन रहते थे। इस कलह का सूत्रपात पीछे कभी हुआ है जैसा कि हम पहिले इस सिद्धान्त में उपनीत हो चुके हैं कि वीर निर्वाण के सप्तम शताब्दी के आरम्भ में जो सब साधु दक्षिणापथ में गये थे उन्हीं में से लौट कर आये हुए साधुगणों ने मूल निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय से पृथक सम्प्रदाय की स्थापना की। इस हालत में यह कहना कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय भगवान महावीर के पश्चात् वस्त्र धारण कर उत्पन्न हुए सत्य का अपलाप है। वास्तव में, जैसा कि हम ऊपर में प्रमाणित कर चुके हैं, दिगम्बर सम्प्रदाय ही मूल निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय से, वस्त्र रहित रहना पसन्द कर पृथक हो गया था।

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदायों के परस्पर पृथक होने के बाद भी बहुत वर्षों तक उनकी प्रतिमाओं में कोई पार्थक्य नहीं हुआ था। मथुरा के कङ्काली टीला में आविष्कृत प्रतिमाओं में से जो सब प्रतिमा पद्मासन में आसीन है उन प्रतिमाओं में पुरुषाङ्ग उत्कीर्ण नहीं है, किन्तु कायोत्सर्ग में दण्डायमान प्रतिमाओं में पुरुषाङ्ग उत्कीर्ण है। ये सब प्रतिमाएं श्वेताम्बरगणों के पूर्व पुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित की गयी थी यह हम पहिले दिखा चुके हैं। किन्तु आधुनिक काल की श्वेताम्बर-सम्प्रदाय की प्रतिमाओं में वस्त्र का जो चिन्ह रहता है वह उनमें नहीं है, एवं आधुनिक दिगम्बर सम्प्रदाय की उपविष्ट प्रतिमाओं में जो पुरुष चिन्ह उत्कीर्ण रहता है वह भी उन प्रतिमाओं में नहीं है। उभय सम्प्रदाय की प्रतिमाओं का पार्थक्य बहुत करके इधर खृष्टीय अष्टम शताब्दी में हुआ है। इस पार्थक्य के होने का विवरण रत्नमन्दिर गणि रचित "उपदेश तरङ्गिणी" नामक पुस्तक से मिलता है[१४]। श्वेताम्बराचार्य्य बप्पभट्टि सूरि एवं गोपगिरि (Gwalior) के अधिपति "आम" नृपति के समय में गिरनार (Girnar) पर्वत में उभय सम्प्रदाय में पहिले युद्ध एवं पश्चात् घोर वितर्क हुआ था। इस विवाद के फलस्वरूप उभय सम्प्रदाय की प्रतिमाओं में पार्थक्य अवधारण के लिये दिगम्बरियों ने अपनी प्रतिमाओं में पुरुषांग उत्कीर्ण करना आरम्भ किया एवं श्वेताम्बरियों ने अपनी प्रतिमाओं में वस्त्र चिह्न देना शुरु किया। बप्पभट्टि सूरि खृष्टीय अष्टम शताब्दी के शेषकाल एवं नवम शताब्दी के पहले भाग में हो गये हैं[१५]। अतः उभय सम्प्रदाय की प्रतिमाओं का पार्थक्य इस समय से प्रचलित हुआ। इस समय से पहिले की प्रतिमाओं में साम्प्रदायिक विशेषता सूचक चिन्ह नहीं था।

ऊपर की आलोचनाओं से यह प्रमाणित होता है कि श्वेताम्बर एवं दिगम्बर, इन दोनों में श्वेताम्बर सम्प्रदाय ही प्राचीन है, यद्यपि 'श्वेताम्बर' शब्द परवर्त्ती काल से व्यवहृत होता है एवं दिगम्बर सम्प्रदाय मूल जैन सम्प्रदाय से विच्छिन्न होकर पृथक सृष्ट हुआ है।

ओसवाल नवयुवक, अप्रैल-मई, १९३०

---

१४ उपदेश तरङ्गिणी, चतुर्थ तरङ्ग, पृ० २४८।

१५ *Archaeological Survey of India*, 1925-26, p. 182 एवं प्रभावक चरित, edited by Hiranand M. Sharma, p. 178.

कलकत्ता के जैन मन्दिर और एक विस्मृत शिल्पी

[पूर्वानुवृत्ति]

(२४) धन्य और शालिभद्र (६५"×१७") : शालिभद्र की ऋद्धि का समाचार सुनकर श्रेणिक (बिम्बसार) ने उन्हें देखने की इच्छा प्रकट की। शालिभद्र की माँ भद्रा ने उन्हें अपने यहाँ आमंत्रित किया। श्रेणिक शालिभद्र के प्रासाद में आते हैं। भद्रा उनकी अभ्यर्थना कर सात खण्ड वाले महल के तीसरे खण्ड तक ले जाती है। शालिभद्र अपनी ३२ रानियों के साथ सातवें खण्ड में रहते थे। राजा जब और ऊपर जाने में असमर्थ हो गए तो शालिभद्र को नीचे आने के लिए बाध्य होना पड़ा। श्रेणिक तो शालिभद्र को देखकर लौट गए किन्तु माँ का यह कथन कि 'राजा हमारे स्वामी हैं उनकी बात तो माननी होगी' उनके हृदय को कचोट गया। उन्होंने निश्चित किया कि वे स्वयं ही अपने स्वामी होंगे। अतः एक-एक रानी का परित्याग करने लगे।

शालिभद्र की बहन सुभद्रा के साथ धन्य का विवाह हुआ था। सुभद्रा स्वामी को स्नान करा रही थी। शालिभद्र के पत्नी-त्याग की बात स्मरण हो जाने से दो बूँद अश्रु उसके नेत्रों से टपक पड़े। धन्य ने इसका कारण पूछा। सुभद्रा ने कहा शालिभद्र प्रव्रज्या लेने के लिए एक-एक रानी का परित्याग कर रहे हैं। यह सुनकर धन्य हँस पड़े। बोले—'ऐसे प्रव्रज्या नहीं ली जाती। जब छोड़ना ही है तो एक साथ ही छोड़ दिया जाता है।' सुभद्रा उस पर खिन्न हो उठी। कहने लगी—'कहना सहज है करना बहुत कठिन है। तुम छोड़ो तो देखें।' 'लो यह छोड़ा'—कहते हुए धन्य गृह-परित्याग कर निकल पड़े। शालिभद्र को साथ लेकर महावीर के पास आए और दोनों ही दीक्षित हो गए। तत्पश्चात् वैभारगिरि पर अनशन द्वारा देह त्याग किया। भद्रा और श्रेणिक उन्हें देखने आए थे। यह सब चित्र में दिखाया गया है।

(२५) हेमचन्द्राचार्य और कुमार पाल (६५"×१७") : प्रासाद के एक कक्ष में सपरिषद कुमार पाल को दिखाया गया है। सामने सिंहासन पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मूर्त्तियाँ बैठायी हुई हैं। दूसरे कक्ष में हेमचन्द्राचार्य पट्टासीन हैं। शिष्यों के चौकी नीचे से सरका लेने पर भी वे अधर में विराजमान हैं। सपरिषद कुमार पाल हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़े हैं। ऊपरी भाग में २४

तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की मूर्त्तियों के सम्मुख हेमचन्द्राचार्य खड़े हैं।

(२६) मेतार्य मुनि (६५"×१६½") : मेतार्य मुनि एक स्वर्णकार के यहाँ भिक्षा लेने जाते हैं। स्वर्णकार सुवर्ण यव तैयार कर रहा था। मुनि पर अविश्वास न कर सुवर्ण यवों को वहीं छोड़कर वह भीतर आहार लेने जाता है। उसी अवसर पर एक पंक्षी उन सुवर्ण यवों को चुराकर एक टूटी हुई दीवाल पर जा बैठा। स्वर्णकार भिक्षा लेकर लौटता है। स्वर्णयवों को न पाकर मुनि से उनके विषय में पूछता है। सत्य कहने पर यह पंक्षी की हत्या करेगा जानकर वे चुप रह जाते हैं। स्वर्णकार मुनि को ही चोर समझकर एक चमड़े की पट्टी को जल में भिगोकर उनके ललाट पर कसकर बाँध देता है। चमड़ा जैसे जैसे सूखता गया पट्टी उतनी ही कसती गयी। अन्ततः वह इतनी कस गयी कि दोनों आँखें निकल कर बाहर गिर गयीं। साथ ही साथ उनकी मृत देह भी जमीन पर गिर पड़ी। मेतार्य के गिरने के शब्द से पक्षी चौंका और सुवर्ण यव उसके मुख से जमीन पर गिर पड़े। सही वस्तुस्थिति को समझकर स्वर्णकार के मन में भय और वैराग्य का संचार एक साथ ही हो गया। उसने मेतार्य का भिक्षा पात्र हाथ में लिया और संसार का ही परित्याग कर दिया।

(२७) अरणिक मुनि (४८"×१७") : अरणिक अपनी माता के साथ धर्मघोष मुनि से दीक्षित हो जाते हैं। भिक्षा के लिए जाते समय वे एक गणिका के घर में प्रवेश कर जाते हैं, उसके हाव-भाव से आकृष्ट होकर वहीं रह जाते हैं। अरणिक की माँ उन्हें खोजते-खोजते वहाँ पहुँचती है। माँ को दूर से आते देखकर अरणिक वेश्या के घर से नीचे उतरते हैं और माँ के साथ अपने गुरु के पास लौट जाते हैं। अरणिक पहाड़ पर अनशन करते हैं एवं कर्म क्षय कर स्वर्गलोक जाते हैं।

(२८) स्थूलभद्र (४९"×१७") : स्थूलभद्र नन्दवंशीय मंत्री शकडाल के पुत्र थे। उन्होंने अपने यौवन के बारह वर्ष तो गणिका कोशा के घर व्यतीत किए थे। बाद में वैराग्य होने पर दीक्षित होकर प्रथम चातुर्मास कोशा के घर व्यतीत किया। इस अवधि में कोशा ने उन्हें नाना प्रकार के हाव-भावों से विचलित करने का प्रयास किया किन्तु स्थूलभद्र स्व-संयम में दृढ़ रहे। चातुर्मास शेष होने पर जब वे लौटकर गुरु के पास गए तो गुरु ने उन्हें सम्मानित किया। इससे ईर्ष्यान्वित होकर उनके गुरु भ्राता—जिन्होंने कि सिंह की गुफा में चातुर्मास व्यतीत किया था—भी कोशा के घर चातुर्मास करने गए एवं विचलित होकर कोशा के लिए रत्न-कम्बल लेने निकले। कोशा

ने उस रत्न-कम्बल को फाड़कर फेंकते हुए उन्हें सदुपदेश देकर धर्म में सुस्थित किया। दोनों घटनाएँ ही इस चित्र में चित्रित हैं।

(२९) गज सुकुमाल (५८"×१७") : गज सुकुमाल श्री कृष्ण के कनिष्ठ भ्राता थे। भगवान नेमिनाथ से जिस दिन वे दीक्षित हुए रात्रि में श्मशान के अन्दर प्रतिमा धारण कर ध्यानस्थ हुए। गज सुकुमाल के क्रुद्ध श्वसुर ने उनके माथे पर मिट्टी की पाल बाँधकर उसमें अंगारे भर दिए। उस घोर वेदना को समभाव से सहन कर गज सुकुमाल ने उसी रात्रि को महाप्रयाण किया। कृष्ण सुबह गज सुकुमाल को देखने आए तो उन्हें उसके महाप्रयाण का संवाद मिला। यह दुष्कृत किसने किया पूछने पर नेमिनाथ ने कहा—'नगर द्वार पर तुम्हें देखते ही जिसकी मृत्यु हो जाएगी उसी ने यह कार्य किया है।' इस चित्र में यही घटना अंकित है।

(३०) राजर्षि प्रसन्नचन्द्र (५८½"×१७") : महावीर के समवसरण में जाते समय श्रेणिक (बिम्बिसार) ने पथ के किनारे राजर्षि प्रसन्नचन्द्र को ध्यान करते देखा। समवसरण में पहुँचने पर उन्होंने महावीर से प्रश्न किया—'ध्यान निमग्न राजर्षि की यदि इसी समय मृत्यु हो जाए तो वे किस गति को प्राप्त करेंगे?' महावीर ने कहा—'अन्तिम नरक।' तत्पश्चात् थोड़ी-थोड़ी देर में वे पूछते ही गए—अब? अब? महावीर भी प्रत्युत्तर देते गए छठी, पंचम, चतुर्थ, तीसरी, दूसरी, प्रथम नरक पुनः प्रथम देवलोक से लेकर सर्वोत्कृष्ट स्वर्ग तक। तभी सहसा देव दुन्दुभि बज उठी। श्रेणिक ने पूछा—'यह क्यों बजी?' महावीर ने जवाब दिया—'राजर्षि को केवल ज्ञान हो गया इसलिए।' सब विस्मित हो उठे। तब महावीर ने स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया—'श्रेणिक ने जिस समय मुझसे प्रश्न किया था उस समय राजर्षि अपनी सन्तान के लिए मन ही मन युद्ध कर रहे थे। उनके पुत्र के राज्य पर आक्रमण हुआ यह बात श्रेणिक के सैनिकों के परस्पर हुए वार्तालाप से उन्हें ज्ञात हुआ था। मन ही मन युद्ध करते हुए जब उनके समस्त शस्त्र नष्ट हो गए तो वे मुकुट फेंककर मारने गये। किन्तु माथे पर हाथ जाते ही उनकी चेतना लौटी। सोचने लगे अरे, कैसा मुकुट? मैं तो संसार त्यागी श्रमण हूँ। तत्पश्चात् चेतना का उर्ध्वारोहण प्रारम्भ हुआ जिसकी परिसमाप्ति हुई केवल ज्ञान लाभ कर।'

(३१) श्रेयांस कुमार (५९"×१७") : प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव जब प्रव्रजित हुए उस समय लोग जानते भी नहीं थे कि साधुओं को आहार कैसे दिया जाता है। अतः वे ऋषभदेव को मणि, मुक्ता आदि भिक्षा देने

आते। फलतः ऋषभदेव को एक वर्ष तक आहार नहीं मिला। अन्ततः जाति स्मरण ज्ञान के प्रभाव से हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस कुमार ने उन्हें इक्षुरस दान किया। उस इक्षुरस से ही भगवान ऋषभ ने एक वर्ष के उपवास का पारना किया। इस महापुण्य के कारण श्रेयांस कुमार ने अक्षय पुण्य उपार्जन किया। उसी दिन से वह वैशाख शुक्ला तीज अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध हुयी।

(३२) इलापुत्र (४६"×१७") : नट कन्या के प्रेम में पड़कर इलापुत्र अगाध सम्पत्ति एवं घर का परित्याग कर नटों के दल में सम्मिलित हो गए थे। नट विद्या में दक्ष होकर वे नाना स्थानों में खेल दिखाते फिरते थे। एकबार उन्हें राजप्रासाद में खेल दिखाना पड़ा। वे जब खेल दिखाने बाँस पर चढ़े राजा की दृष्टि नट कन्या पर पड़ी। इलापुत्र को नटकन्या की प्राप्ति में बाधक समझकर राजा खेल शेष होने पर बार-बार उन्हें खेल दिखाने को कहते रहे। इस प्रकार समस्त रात्रि इलापुत्र खेल दिखाते रहे। सुबह सूर्योदय होने पर बाँस पर से ही इलापुत्र ने देखा एक श्रमण निर्विकार भाव से सुन्दरी तरुणी से जल-भिक्षा ले रहे हैं। इलापुत्र सोचने लगे—वासना विजयी वे श्रमण ही सुखी हैं। वासना के वशीभूत होकर नटकन्या के प्रेम के लिए उसने केवल पिता का वैभव ही परित्याग नहीं किया बल्कि पुरस्कार के लिए नटवृत्ति का जघन्य कार्य भी करता फिर रहा है। इलापुत्र की चेतना जाग्रत हो गयी। बाँस पर चढ़े-चढ़े ही केवल ज्ञान प्राप्त होता है और वे उतरकर अरण्य में चले जाते है। चित्र में राजसभा में खेल दिखाने से लेकर केवल ज्ञान प्राप्ति तक दिखाया गया है।

(३३) अभयदेव सूरि (७३"×१७") : नवांगी टीकाकार प्रख्यात आचार्य अभयदेव सूरी एक शक्तिधर पुरुष थे। चित्र में शासन देवी उपस्थित होकर उन्हें नव अंगों की टीका रचना करने को कह रही है। एक वृक्ष के नीचे खड़े होकर वे स्तवन पाठ कर रहे हैं। वन में गाय के स्तनों से अपने आप जिस स्थान पर दूध झर पड़ता है वहाँ से पार्श्वनाथ की प्रतिमा निकाली जा रही है। उस प्रतिमा का अभिषेक हो रहा है। अभिषेक जल से आचार्य व्याधिभय दूर कर रहे है।

(३४) दंडण ऋषि (७३" × १७) : स्वर्णमयी द्वारका के अक्षय से दंडण कुमार भगवान नेमिनाथ से दीक्षित होने जा रहे है। पीछे श्री कृष्ण गजारूढ़ है। दंडण कुमार दीक्षा ले रहे है। भिक्षा के लिए जाने पर उन्हें कहीं भी भिक्षा नहीं मिलती। एक श्रावक ने जब श्री कृष्ण को उन्हें वन्दन करते देखा

वो घर ले जाकर दंडण ऋषि को मोदक बहराया। अपने प्रभाव से नहीं बल्कि श्री कृष्ण के प्रभाव से वह मोदक मिला जानकर वे उसे जमीन में गाड़ रहे हैं। तभी उन्हें केवल ज्ञान हो गया।

(३५) जिनदत्तसूरी और जिनकुशलसूरी (७५"×१७") : ये दोनों ही प्रभावशाली आचार्य थे। जिनदत्तसूरी बैठे हैं। उनके सम्मुख ६४ योगिनियाँ हाथ जोड़े खड़ी हैं। पंचनद पर पाँच मन्दिर है। पंचनद के पाँच पीरों को वे वश में करते हैं। वे उनकी सेवा में उपस्थित होते हैं। अजमेर के उपाश्रय में जब वे प्रतिक्रमण कर रहे थे तभी विद्युतपात हुआ। उस विद्युतपात को पात्र से आबद्ध कर वे श्रावकों की प्राण रक्षा कर रहे हैं। अन्यत्र इसी चित्र में मृत शिशु को जीवन दान दे रहे हैं। इसी के पार्श्व में दिखाया गया है कि श्री जिनकुशलसूरीजी डूबते हुए जहाज को किनारे ला रहे हैं, उनकी अलौकिक शक्ति से यात्रियों की जीवन रक्षा हुई।

(३६) अकबर प्रतिबोधक जिनचन्द्रसूरी (७४½"×१७½") : अकबर के समकालीन जिनचन्द्रसूरी भी अलौकिक शक्ति के अधिकारी थे। आचार्य श्री के जीवन की कई घटनाएँ यहाँ चित्रित है। आचार्य की परीक्षा करने के लिए जमीन में एक खड्डा खोदकर अकबर ने उसमें एक बकरी रख दी। उस पर काठ का तख्ता देकर गलीचा बिछा दिया। जैन श्रमण जीव को उलांघते नहीं अतः जिनचन्द्रसूरी वहाँ आकर खड़े हो गए। अकबर के कारण पूछने पर उन्होंने बताया यहाँ तीन जीव है। यह सुनकर अकबर विस्मित हो गए। बोले—'यहाँ तो एक ही जीव है।' गलीचा हटाकर देखने पर आचार्य का कथन ही सत्य निकला। बकरी गर्भवती थी। अतः उसने वहाँ दो बच्चों को जन्म दे दिया था। दूसरी जगह अकबर और आचार्य आकाश की ओर देख रहे है। एक काजी ने अपनी टोपी शून्य में उछाल कर स्तम्भित कर दी। आचार्य श्री को उसे उतारने को कहा गया। आचार्य श्री ने रजोहरण उत्क्षिप्त कर काजी की टोपी को नीचे उतारा। एक दिन आचार्य श्री के शिष्य ने भूल से अमावस्या को पूर्णिमा कह दिया। जैन धर्म की प्रभावना के लिए शासन देवी प्रदत्त एक थाल को आकाश में स्थापित कर अमावस्या की रजनी को पूर्णिमा की रजनी की भाँति आलोकित किया। अकबर ने दूर-दूर तक अपने अश्वारोही भेजे। किन्तु उन्होंने सर्वत्र आलोक परिव्याप्त ही देखा।

(३७) सुदर्शन श्रेष्ठी का शीलव्रत (४६"×१६॥") : सुदर्शन सेठ के रूप पर आकृष्ट होकर राजमहिषी ने कौशल से उसे राजप्रासाद में बुलवाया और

उससे अपनी वासनावृत्ति की कामना की। अस्वीकार करने पर सुदर्शन पर बलात्कार का आरोप लगाकर उसे बन्दी बनवा दिया। राजा ने शूली का आदेश दिया। सुदर्शन को शूली पर चढ़ाया गया। किन्तु शील के प्रभाव से शूली सिंहासन में रूपान्तरित हो गयी। सत्य अवगत होने पर राजा ने सुदर्शन को सम्वर्द्धना सहित नगर प्रवेश करवाया और रानी को सजा दी।

(३८) भरत चक्रवर्ती की तीर्थयात्रा (६६" × १६॥") : परिवार सहित भरतचक्रवर्ती शत्रुंजय की यात्रा करने जा रहे हैं। ऋषभदेव के प्रथम गणधर पुण्डरिक भी साथ हैं। पर्वत के नीचे भरत हाथ जोड़कर खड़े हैं।

(३९) भरत चक्रवर्ती को केवल ज्ञान (७१"×१६॥") : सपरिषद भरत सिंहासन पर बैठे हैं। सर्वांग अलंकारों से सुसज्जित है। केवल अंगूठी नहीं है। इस कारण वे अपने को निष्प्रभ समझने लगे। अतः आत्मदीप्ति के लिए व्याकुल हो उठे और वहीं केवल ज्ञान प्राप्त किया। केवल ज्ञान प्राप्त कर वे श्रमण हो गए।

(४०) नेमिनाथ की बारात (४६"×१६॥") : नेमिनाथ रथारूढ़ होकर विवाह के लिए जा रहे हैं। उग्रसेन की रूपमती कन्या राजीमती वरमाला लिए खड़ी है। राह में आहार के लिए एकत्रित प्राणियों की करुण चित्कार सुनकर नेमिनाथ को वैराग्य उत्पन्न हो गया है। वे गिरनार पर्वत पर आरोहण कर रहे हैं। राजीमती भी साध्वी बनकर उनका अनुगमन कर रही है।

(४१) आदिनाथ समवसरण (१६॥"×१६॥") : भगवान ऋषभदेव का समवसरण लगा है। भरत चक्रवर्ती माता मरूदेवी को गजारूढ़ किए सभा की ओर ला रहे हैं। दूर से ही पुत्र ऋषभ का वैभव देखकर उत्फुल्ल हो उठी है मरूदेवी। वहीं उन्हें केवल ज्ञान भी प्राप्त होता है।

(४२) सुभद्रा और सती सीता (७२"×१७") : सुभद्रा—सुभद्रा ने एक मुनि को आहार देते हुए देखा मुनि की आँखों में तृण पड़ा हुआ है। सुभद्रा ने उस तृण को निकाल दिया। तृण निकालते समय सुभद्रा के ललाट पर लगा कुंकुम मुनि के मस्तक पर लग गया। मुनि जब भिक्षा लेकर लौटने लगे तो पड़ोसिन मुनि के भाल पर लगा कुंकुम देखकर उनकी और सुभद्रा की खूब निन्दा करने लगती है। सुभद्रा सती है यह प्रमाणित करने के लिए शासन देवी नगर द्वार बन्द कर देती है। दैववाणी होती है यदि कोई सती स्त्री

कच्चे सूत से चलनी बाँधकर कुएँ से जल निकाले और दरवाजे पर छिड़के तो यह द्वार खुल सकता है। वैसा करने में कोई समर्थ नहीं हो पाती है। सुभद्रा उस परीक्षा में उत्तीर्ण होती है।

सीता—सतीत्व के प्रमाण के लिए सीता ज्वलन्त अग्नि में प्रवेश करती है। सम्मुख राम, लक्ष्मण, हनुमान खड़े हैं। शील के प्रभाव से अग्नि शीतल हो जाती है। चिता सिंहासन में रूपान्तरित हो जाती है।

(४३) चन्दनबाला (७२" × १७") : युद्ध में चम्पापति के निहत होने पर उनकी कन्या कौशाम्बी में क्रीतदासी के रूप में विक्रय होती है। धन श्रेष्ठी उसे खरीदते हैं। श्रेष्ठीपत्नी चन्दनबाला के रूप पर ईर्ष्यान्वित होकर सोचती है पति इसके वश में हो जाएँगे अतः उसका माथा मुँडवा कर हाथ-पावों में बेड़ियाँ डालकर तहखाने में बन्द कर देती है। तीन दिनों पश्चात् श्रेष्ठी इस घटना को जानकर उसे तहखाने से निकालते हैं। ठीक उसी समय भगवान महावीर आते हैं, उससे भिक्षा ग्रहण करते हैं। आकाश से देवगण सुवर्ण वृष्टि करते हैं। पश्चात् यही चन्दनबाला महावीर के साध्वी-संघ की प्रमुखा बनती है।

[यह प्रबन्ध श्री भँवरलालजी नाहटा की सहायता से तैयार किया गया है : कलाक जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर के सौजन्य से]

श्रीपाल

[पूर्वानुवृत्ति]

चतुर्थ दृश्य

[नाव का बहिर्भाग। धवल चिन्ताहुर बना बैठा है। तभी उसके एक मित्र कुटिलक का प्रवेश]

कुटिलक : अरे ! तुम्हें क्या हुआ ? दिन-ब-दिन दुबले होते जा रहे हो ?

धवल : अरे मत पूछो कुछ। रात-दिन चिन्ता खाए जा रही है।

कुटिलक : चिन्ता ? बड़ी बुरी होती है यह चिन्ता। कहते हैं चिन्ता चिता से भी बढ़कर जलाती है। चिता तो बेचारी एक बारगी ही जला डालती है किन्तु, यह चिन्ता तो पीछा ही नहीं छोड़ती मनुष्य का। यह तो निरन्तर दग्ध करती रहती है।

धवल : अरे, वह सब तो मैं भी जानता हूँ। ....पर इसे दूर कैसे करूँ ?

कुटिलक : पहले बताओ तो सही क्या चिन्ता है ? तब तो उसे दूर करने का कोई उपाय सोचा जाएगा ? क्या तुम्हें ज्ञात नहीं मेरा जैसा नाम है वैसा ही काम है ?

धवल : कह तो तुम ठीक ही रहे हो। तो बता दूँ ?

कुटिलक : हाँ, हाँ बताओ न। बताने से मनुष्य की चिन्ता ही आधी हो जाती है।

धवल : तुम इस श्रीपाल को देख रहे हो न ?

कुटिलक : देख तो रहा हूँ। सज्जन है, विनीत है, भाग्यशाली है।

धवल : बस मेरी चिन्ता का यही तो कारण है। खाली हाथ आया था और अब मेरी आधी नाव का मालिक बन बैठा है। दो-दो राजकन्याओं से उसका विवाह भी हो गया है। ऊपर से दहेज में मिला इतना धन-रत्न। बब्बर कुल और रत्नद्वीप की ये राजकन्याएँ ? अप्सराएँ हैं अप्सराएँ।

कुटिलक : हाः हाः हाः ! तो तुम्हें ईर्ष्या हो रही है ?

धवल : होगी क्यों नहीं ? होना ही तो स्वाभाविक है। मेरी बदौलत ही तो यह सब प्राप्त किया है तो फिर यह सब मेरी क्यों नहीं हो सकती ?

कुटिलक : होगी, अवश्य होगी। हो क्यों नहीं सकती ?

धवल : कैसे होगी ?

कुटिलक : श्रीपाल को ही समाप्त कर दिया जाए तो ?

धवल : तुमने तो मेरी मन की बात कह दी। पर''''श्रीपाल को समाप्त करें तो कैसे ? युद्ध उससे कर नहीं सकते। अब उसके पास पर्याप्त सेना भी हो गयी है। नहीं होती तो भी क्या ? हजार सुभटों से जूझा था। देखा नहीं बब्बर कुल के राजा को कैसे पराजित कर दिया।

कुटिलक : किन्तु ठहरो, मुझे एक युक्ति सूझ गयी है। समुद्र में किसी को समाप्त कर देना कठिन नहीं है। वह देखो, क्या है वह ?

धवल : वही तो न, जो नाव से बाहर लटक रही है ? जिस पर बैठकर समुद्र का निरीक्षण किया जाता है ?

कुटिलक : हाँ, हाँ, उसी से हमारा काम बन जाएगा और किसी को सन्देह भी नहीं होगा।

धवल : सो कैसे ?

कुटिलक : तुम उस पर बैठकर जोर से चिल्लाना—देखो, देखो श्रीपाल, कितना बड़ा मगरमच्छ ! जब वह निकट आ जाए तुम उतर कर मचान पर उसे चढ़ा देना। फिर ज्योंही वह मच्छ देखने का प्रयास करे मचान की रस्सी काट देना और जब श्रीपाल जल में गिर जाए ऊपरी दुःख दिखाते हुए छाती पीट-पीट कर रोना-चिल्लाना—अरे कोई दौड़ो, दौड़ो, मचान की रस्सी टूट जाने से श्रीपाल जल में गिर गए। फिर कुछ दिनों तक शोक विह्वल रहना, अन्ततः''''

धवल : कहना होगा कुटिलक तुम सचमुच ही बुद्धि के भण्डार हो। यह लो तुम्हारा पुरस्कार [गले की मुक्तामाल खोलकर देता है]।

कुटिलक : बस इतना-सा ही पुरस्कार ?

धवल : अरे और भी दूँगा। पहले काम तो हो जाने दो।

कुटिलक : काम तो अब हो ही जाएगा। इसमें क्या संशय है।

धवल : तब चलो इस अभिनय को करके तो देखें—[धवल और कुटिलक मचान के निकट जाते हैं। धवल मचान पर चढ़कर चिल्लाता है] कुमार, कुमार, देखो कितना सुन्दर यह मगर-मच्छ। और देखा बड़ा ही नहीं इसके तो सिर भी आठ हैं।

कुटिलक : [आहट पाकर पीछे मुड़कर देखते हुए] अरे ! श्रीपाल तो

सचमुच ही इधर आ रहे हैं। लगता है मौत ही उन्हें यहाँ खींच लायी है। [धवल को] मित्र, कुमार इधर ही आ रहे हैं। तब तो अच्छा ही है काम आज ही बन जाएगा।

[श्रीपाल का प्रवेश]

धवल : आओ श्रीपाल, आओ। बड़ी लम्बी है तुम्हारी उम्र। तुम्हें याद ही कर रहा था। देखो आठ सिर का मगरमच्छ।

श्रीपाल : देखूँ, कैसा है मगरमच्छ।

[धवल उतर जाता है, श्रीपाल चढ़ जाते हैं। उनके चढ़ते ही कुटिलक रस्सी काट देता है। श्रीपाल जल में गिर जाते हैं]

कुटिलक : अब तुम जोर-जोर से छाती पीट-पीट कर रोना शुरू करो।

धवल : अरे बचाओ! बचाओ! श्रीपाल समुद्र में गिर गए! हाय रे! अब क्या होगा? मचान की रस्सी टूट जाने से श्रीपाल जल में गिर गए! हाय! हाय! अरे कोई पानी में उतर कर उन्हें बचाओ!

[मल्लाह सहित दो चार आदमी दौड़कर आते हैं]

धवल : जल्दी उतरो जल में जल्दी उतरो। मचान की रस्सी टूट जाने से श्रीपाल समुद्र में गिर गए हैं।

मल्लाह : पर यहाँ जल में उतरना असम्भव है। यहाँ के मगरमच्छ तो जल में उतरते ही मनुष्य को खा जाते हैं।

धवल : हाय रे! अब क्या होगा? [कहते हुए धवल वहीं बैठ जाते है]

कुटिलक : [सान्त्वना देते हुए] मित्र, होनहार को कौन टाल सकता है। अब तो तुम्हें धीरज से ही काम लेना होगा। कितने प्रतापी थे कुमार श्रीपाल। फिर तुम्हारे तो सबसे बड़े हितैषी थे वे। तुम्हारा दुःख मैं समझता हूँ। पर....अब किया भी क्या जा सकता है?

पंचम दृश्य

[नौका का अभ्यंतर भाग। मदन सेना और मदन मंजूषा दोनों रो रही हैं। धवल प्रवेश करता है]

धवल : क्या कहूँ, किस प्रकार आपलोगों को सान्त्वना दूं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। आपलोगों की तो बात ही क्या मेरा स्वयं का हृदय फटा जा रहा है। सर्वनाश हो गया हमलोगों का।

कुमार इस प्रकार मझधार में हमें छोड़ जाएँगे ऐसी तो कल्पना ही नहीं की थी। कितना सहारा था हमको उनका, कैसे-कैसे संकटों से उन्होंने हमें बचाया था! हाय, अब क्या होगा?

मदन सेना : देव, उनके बिना हम तो एकदम ही अनाथ हो चुकी हैं। इस सामुद्रिक यात्रा में वे ही हमारे एकमात्र संबल थे। कितना कठोर है हमारा हृदय? जो कि ऐसा दारुण संवाद सुनकर भी फट नहीं गया। मन करता है हम भी इस समुद्र में कूदकर उनका अनुगमन करें।

धवल : नहीं, नहीं, ऐसा तो सोचना भी पाप है। आत्महत्या तो महापाप है। कुमार पुण्यवान थे, धार्मिक थे, वे जहाँ भी उत्पन्न हुए होंगे वहाँ सुख भोग ही करते होंगे। फिर आपलोगों का यह सोचना कि आप दोनों असहाय हो गयी हैं गलत है। जब तक धवल सेठ जीवित है तब तक आप किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें। श्रीपाल की धन सम्पत्ति तो आपकी है ही, धवल की सम्पत्ति को भी आप अपनी ही सम्पत्ति समझिए। बहुत कर्जा चुकाना है मुझे श्रीपाल के उपकारों का।

मदन मंजूषा : आपने जो कुछ कहा वह आपका बड़प्पन है; किन्तु हमें आपके धन ऐश्वर्य की कोई आवश्यकता नहीं है। बस हम इतना ही चाहती हैं कि आप हमें हमारे पितृगृह पहुँचा दें। बड़ी कृपा होगी आपकी।

धवल : नहीं देवी! यह आप क्या कह रही हैं। आजीवन कष्ट उठाने के लिए आपलोगों को पितृगृह में ले जाकर खटक दूँ। अभी आपने संसार में देखा ही क्या है? अभी तो आपके पावों का महावर भी नहीं छूटा। कितना प्रयास किया था हमलोगों ने कुमार को बचाने का। किन्तु हाय, सब व्यर्थ हुआ। कुमार के अकस्मात् मंच की रस्सी टूट जाने से समुद्र में गिरने का वह दृश्य अब आँखों के सम्मुख आता है तो कलेजा मुँह को आने लगता है। लेकिन किया क्या जा सकता है? जाने वाला तो चला गया, पर जो जीवित हैं उन्हें तो शोक से उबारने की चेष्टा मुझे करनी ही होगी। अब आप सब शोक छोड़कर अपने जीवन के विषय में सोचिए।

मदन सेना : हम आपका आशय नहीं समझ पायीं। आप कहना क्या चाहते हैं ?

धवल : ब''''स''''यही कि दुर्लभ मानव जीवन को आप सार्थक बनाएँ। अपने रूप-यौवन को सांसारिक सुख भोगकर सफल बनाएँ। मेरे आश्रय में रहकर संसार के सभी सुखों का भोग करें। किस चीज की कमी है आपलोगों को। दास, दासी, वस्त्राभूषण सभी कुछ तो प्रस्तुत है ? और इस धवल को तो आप अपना भृत्य ही समझें।

मदन मंजूषा : क्या कह रहे हैं आप ? यह सब अनुचित है, घोर पाप है।

मदन सेना : आप रक्षक होकर भक्षक बनें, यह तो सर्वथा निन्दनीय है।

धवल : मैं तुमलोगों से उचित-अनुचित सीखने नहीं आया। सारी सत्ता मेरे हाथ में है। तुम्हारा रूप-यौवन सब मेरे अधीन है। मैं जो चाहे कर सकता हूँ। लेकिन, इतना अवश्य चाहता हूँ बलसे नहीं प्रेम से ही तुम्हें प्राप्त करूँ।

मदन सेना : अच्छा ! तो अब समझ में आया। कुमार गिरे नहीं आप द्वारा गिराए गए हैं। हमें प्राप्त करने के लिए ही आपने यह कुकृत्य किया है।

धवल : जबान बन्द करो। मैं आगे कुछ नहीं सुनना चाहता। अब मेरे प्रस्ताव को स्वीकृत करने के सिवाय तुम्हारे लिए दूसरी कोई राह नहीं। न तुमलोग जल में कूद सकती हो न यहाँ से बाहर निकल सकती हो। मेरे प्रहरियों का सख्त पहरा होगा तुम्हारे चारो ओर। धवल ने जब जो कुछ चाहा उसे प्राप्त करके ही रहा है।

[बाहर से आवाज आती है]

मल्लाह : देव ! भयंकर तूफान आ रहा है। पाल की रस्सियाँ टूट रही हैं। समुद्र हिलोरें ले रहा है। आप शीघ्र बाहर आइए।

[धवल घबड़ा कर खड़ा होता है। गिरता-पड़ता बाहर जाने को उद्यत होता है। जाते-जाते कहता है]

धवल : इस समय तो मैं जा रहा हूँ। पहले तूफान से बचने की चेष्टा करनी है। तुमलोगों को एक सप्ताह का समय देता हूँ। इस बीच यदि तुमलोग नहीं मानीं तो [illegible] होगा।

जीव

—हरिसत्य भट्टाचार्य

जड़ से भिन्न पदार्थों को जैन दार्शनिक 'जीव' कहते हैं। योग और सांख्य दर्शन में जिसे 'पुरुष' कहा गया है ; न्याय, वैशेषिक और वेदान्त मत से जो 'आत्मा' है, वह जैन दर्शन की दृष्टि से जीव है। इतना होने पर भी इनके बीच का भेद मामूली नहीं है। सांख्य तथा योगदर्शन प्रतिपादित पुरुष के साथ जैन दर्शन स्वीकृत जीव का भेद है। न्याय और वैशेषिक के आत्मा तथा जैन दर्शन के जीव के बीच में भी भेद है। वेदान्तियों की आत्मा और जैनों का जीव भी एक नहीं है। चार्वाकमत सम्मत निरात्मवाद को भी जैन नहीं मानते। जैन दार्शनिकों ने बौद्धों के विज्ञानप्रवाहवाद का भी खण्डन किया है। तब फिर जैन दर्शन सम्मत जीव का लक्षण क्या है? द्रव्य संग्रह और पंचास्तिकाय में उसकी व्याख्या इस प्रकार की है—

जीवो उवओगमओ अमुत्तो कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥ २१॥

—द्रव्य संग्रह।

जीव उपयोगमय, अमूर्त, कर्त्ता, अपनी देह के समान परिमाण वाला, भोक्ता, संसारस्थ, सिद्ध और स्वभाव से ऊर्ध्वगति वाला है।

जीवोत्ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता च देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्म संजुत्तो॥

—पं० स० स०

जीव अस्तित्व वाला, चेतन उपयोग विशिष्ट, प्रभु, कर्त्ता, भोक्ता, देहमात्र, अमूर्त और कर्म संयुक्त है।

श्री वादिसूरि भी प्रमाणनयतत्वालोकालंकार (७-५६) में कहते हैं कि—चैतन्यस्वरूपः, परिणामी, कर्त्ता, साक्षाद्मोक्ता, स्वदेह परिमाणः, प्रतिक्षेत्रे विभिन्नः, पौद्गलिकादृष्टवांश्चायम्।

उपरोक्त वचनों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि जैन दर्शनानुसार

जड़ से भिन्न जो जीव है वह सत् पदार्थ है। वह चेतन, अमूर्त, संसारी दशा में कर्मवश, कर्त्ता, भोक्ता, देह प्रमाण और प्रभु इत्यादि लक्षणवाला है।

चार्वाक तो जड़ से भिन्न पदार्थ का अस्तित्व ही नहीं स्वीकार करते। वे पृथ्वी, पानी, वायु और तेज—इन चार पदार्थों को ही मानते हैं और कहते हैं कि इनके सिवाय अन्य एक भी एकान्त सत् पदार्थ नहीं है। उनका मत है कि जगत के समस्त पदार्थ इन्हीं चार महाभूतों के सम्मिश्रण से उत्पन्न होते हैं। मनुष्यादि जीव चेतन हैं, इससे तो वे इन्कार नहीं कर सकते; परन्तु चैतन्य है, इसलिए आत्मा के समान कोई पदार्थ होना चाहिए, इस बात को वे स्वीकार नहीं करते। जिस प्रकार धान्य और गुड़ आदि पदार्थ सड़ते-सड़ते, सुरा रूप में परिणमित हो जाते हैं उसी प्रकार उपरोक्त चार महाभूतों से ही चैतन्य परिणमित होता है। चार्वाकों का यह सिद्धान्त है।

वर्तमान युग के कतिपय जड़वादी कुछ अंशों में इसी सिद्धान्त की दुन्दुभि बजा रहे हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार यकृत में से एक प्रकार का रस निकलता है उसी प्रकार मस्तक में से चैतन्य उत्पन्न होता है। अतएव जड़ पदार्थ से भिन्न आत्मा नामक पदार्थ को—किसी स्वतन्त्र पदार्थ की सत्ता मानने की आवश्यकता नहीं है।

इन सबको उत्तर देना चाहें तो कह सकते हैं कि, धान्य, गुड़ आदि में से जो परिणमित होता है। वह वस्तुतः जड़ ही है। यकृत में से जो रस निकलता है वह भी जड़ है। ऐसा नियम है कि जड़ में से जड़ पदार्थ ही उत्पन्न हो सकता है। मस्तक में से भी ऐसा जड़ पदार्थ उत्पन्न होना संभव है। जड़ में से जड़ से सर्वथा भिन्न पदार्थ कैसे पैदा हो सकता है? इस तर्क पर विचार करके, कुछ आधुनिक अध्यात्मवादी दार्शनिक जड़वाद का त्याग करके चैतन्य की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने की ओर आकर्षित हुए हैं। बौद्ध जड़ से चैतन्य की उत्पत्ति नहीं मानते, उन्होंने विज्ञान की क्षणिक सत्ता मानकर जड़वाद को पीछे हटा दिया है। जैनों ने जीव में चैतन्य गुण स्वीकार करके अध्यात्मवाद की नींव खूब मजबूत कर दी है। जैनों ने चार्वाकों और बौद्धों को प्रबल उत्तर दिया है।

चार्वाक मत के खण्डन में जैन कहते हैं कि यदि जड़ में से ही चैतन्य उत्पन्न होता हो तो प्राणी की मृत्यु के पश्चात् चैतन्य क्यों नहीं दिखता?

मृत्यु के पश्चात् शरीर तो जैसे का तैसा ही रहता है ; उसका कोई अंश कम नहीं हो जाता, मृत्यु होते ही रोग चला जाता है। उस रोग के जाने के बाद अकेला शरीर पड़ा रहता है, वह तो आपके सिद्धान्तानुसार, सर्वथा नीरोग-स्फूर्तियुक्त होना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता। इसीसे हम कहते हैं कि जड़ शरीर कदापि चैतन्य का कारण नहीं हो सकता।

शरीर को चैतन्य का सहकारी कारण कहा जाए तो भी ठीक नहीं है, क्योंकि चैतन्य का एक अशरीरी—अजड़-उपादान तो आपको मानना ही पड़ेगा। परन्तु ऐसा मानने पर आपका सिद्धान्त मिथ्या हो जाएगा। यह बात आपके अनुकूल न होगी।

यदि शरीर को ही चैतन्य का उपादान कारण माना जाए तो भी काम नहीं चल सकता, क्योंकि ऐसा मान लें तो जब कभी शरीर में विकार उत्पन्न हो तब चैतन्य में भी वैसा ही विकार आ जाना चाहिए। पर ऐसा अनुभव नहीं होता। इसके अतिरिक्त आनन्द, भय, शोक, निद्रा, मूर्च्छा जैसे विकार जब चैतन्य में आते है तब शरीर में भी उनके अनुरूप विकार दिखने चाहिए, परन्तु ऐसा होते हुए नहीं देखा जाता।

एक और आपत्ति भी होगी। प्राणी जितना अधिक मोटा हो, बुद्धि भी उसकी उतनी ही अधिक होनी चाहिए परन्तु साधारणतः इसके विपरीत ही देखा जाता है। शरीर यदि चैतन्य का उपादान कारण हो तो ऐसा क्यों नहीं होता ? छोटे-पतले शरीर वाले प्राणी अधिक बुद्धिशाली देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त चैतन्य प्रवाह में प्राणी को "अहं" ज्ञान रहता है अर्थात् सदैव यह ज्ञान रहता है कि "मैं हूँ"। यह ज्ञान शरीर में से उत्पन्न नहीं होता। यदि ऐसा होता तो "मेरा शरीर" यह प्रयोग कैसे सम्भव होता ? जिसे "मैं" कहते हैं वह शरीर से भिन्न और प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध हो सकने वाली वस्तु है।

जैनों से बौद्ध दार्शनिक इस बात में सहमत है कि, चैतन्य जड़ पदार्थ का विकार नहीं है। परन्तु बौद्ध आत्मा नामक एक सत् पदार्थ के अस्तित्व को नहीं मानते। वे कहते हैं कि प्रतिक्षण विज्ञान का उदय और लय होता रहता है। इस विज्ञान के मूल में कोई स्थायी सत् पदार्थ नहीं है। एक क्षण जो विज्ञान संस्कार रूप होता है, दूसरे क्षण वही विज्ञान का कारण रूप होता

है, फिर वह कार्य रूप विज्ञान अपने बाद के विज्ञान का कारण हो जाता है। इस प्रकार परस्पर भिन्न क्षणिक विज्ञान समूह में परम्परा से कार्य कारण भाव रहता है। बौद्ध इसे विज्ञान प्रवाह कहते हैं। इस प्रवाह रूप विज्ञान संतान के अतिरिक्त आत्मा या जीव आदि अन्य कोई वस्तु नहीं है।

Hume, Mill आदि Sensationist दार्शनिक भी बौद्धों के समान विज्ञानवादी अथवा निरात्मवादी हैं। उन्होंने एक चैतन्यधारी और अविच्छिन्नता की कल्पना की है। बौद्ध दर्शन के विज्ञान प्रवाह से इसका मेल ठीक बैठता है।

इस निरात्मवाद के विरुद्ध पहली आपत्ति तो यह है कि, क्षणिक विज्ञान समूह के मूल में कोई नियामक सत् पदार्थ नहीं है। दो पदार्थों को जोड़ने वाली कोई वस्तु न हो तो ये दोनों अलग हो जाएं यह बात समझ में आने योग्य है। अतएव संतान अथवा विज्ञान प्रवाह असम्भव हो जाता है। आत्मा न हो तो क्षणिक विज्ञान समूह में क्रम, व्यवस्था या शृंखला कैसे रह सकती है? यदि शृंखला न हो तो स्मृति (पहिले के अनुभव का पुनः प्रबोध) और प्रत्यभिज्ञा (यह वही है) कैसे हो सकती है? वेदान्त दर्शन ने भी इस विज्ञानवाद का खण्डन किया है। जैनाचार्यों ने भी चुन-चुनकर इस विज्ञानवाद के दोष बतलाए हैं।

बौद्धों के अनात्मवाद के सम्बन्ध में जैनाचार्य कहते हैं कि यदि जीव जैसी कोई वस्तु न मानो तो फिर स्मृति का होना असम्भव हो जाएगा। सर्वथा पृथक हो जाने वाले विज्ञान समूह में एक के अनुभव की स्मृति दूसरे को कैसे हो सकती है? यदि ऐसा ही बनता हो तो फिर एक व्यक्ति का अनुभव अन्य की स्मृति का विषय होना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता।

बौद्ध चैत्यवंदना में विश्वास रखते हैं। जैनाचार्य कहते हैं कि, आपके धर्म में चैत्यवन्दना एक पुण्य कार्य है, और उससे उत्तम फल की प्राप्ति होती है। परन्तु जो चैत्यवन्दन करता है, वह दूसरे ही क्षण में नहीं रहता—नष्ट हो जाता है। तब फिर चैत्यवन्दन का सुफल किसे मिलेगा? दूसरे जैसा होना ही करेगा कोई और फल मिलेगा किसी और को। अतएव जीव [illegible] उसका फल किसी को भी नहीं मिलेगा। [illegible] और "पुण्योपाय" नामक दो [illegible]

पड़े और कृतकर्म निष्फल हो जाए, ये दोष कुछ ऐसे-वैसे नहीं हैं। आपका अनात्मवाद तो वस्तुतः कर्मफल वाद के मूल में ही कुठाराघात करता है।

युक्तिपूर्वक बौद्धों का विरोध करने में जैन दर्शन और वेदान्त दर्शन एकमत है, परन्तु जैन और वेदान्त के मौलिक सिद्धान्त में भेद है। वेदान्त दर्शन जीवात्माओं की परमार्थिक सत्ता स्वीकार करने से सर्वथा इन्कार करता है। उसका मत है कि आत्मा एक और अद्वितीय है—अद्वैत ब्रह्म है, असंख्य जीवात्मा, एक अद्वितीय—एक मात्र सत् अद्वैत ब्रह्म के परिणाम अथवा विवर्तमात्र हैं। ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि, समस्त जीवों में यही एक परमात्मा विराजमान है; एक आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई आत्मा, दूसरा कोई सत्पदार्थ नहीं है। Spinoza और Parmenides के मत के साथ वेदान्त मत की कुछ समानता है।

वेदान्त के इस अद्वैत सिद्धान्त को जैन नहीं मानते। जैन दर्शन के मतानुसार आत्मा अथवा जीवों की संख्या अनन्त है एवं प्रत्येक जीव एक दूसरे से स्वतंत्र है। जीव स्वतंत्र न होते, मूलतः सब जीव एक ही होते तो एक जीव के सुख से सब जीव सुखी हो जाते, एक के दुःख से सब दुःखी होते, एक के बन्धन से सब बन्धनग्रस्त रहते और एक की मुक्ति से सब मुक्त हो जाते। जीवों की भिन्न-भिन्न अवस्था देखकर सांख्य दर्शन ने आत्मा के अद्वैतवाद का परिहार किया और आत्मा की विविधता मानी। जैन दर्शनने 'प्रतिक्षेत्रे भिन्न' कहकर सांख्य सम्मत जीव की विविधता स्वीकार की है।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

जिनवाणी ॥ अक्टूबर १९८०

आचार्य श्री हस्तीमलजी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'अपरिग्रह वाद से ही विश्व कल्याण [३]' (श्री हीरामुनि), 'आत्मा के पाँच भाव [४]' (श्रीलालाल गिरधारीलाल सेठ, अनु० लालचन्द जैन)।

जैन जर्नल ॥ अक्टूबर १९८०

इस अंक में है 'Problems of Purva' (Suzuko Ohira), 'Ripupratisatru' (Ganesh Lalwani), 'The Bright Religion of the Jinas' (Leona Smith Kremser), 'Penology and Jaina Scriptures' (Ramesh C. Lalan), 'On Application of the Law of Combination in Earyy Jaina Philosophy' (Sajjan Singh Lishk), 'The Jaina Concept of Karma' (J. C. Sikdar)।

जैन सिद्धान्त भास्कर/Jaina Antiquary ॥ जून १९८०

निर्मलकुमार जैन तथा चक्रेश्वरकुमार जैन के प्रति दी गयी श्रद्धांजलियों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन दर्शन का सामान्य परिचय' (रामजी राम), 'Is Bondge the Intrinsic Nature of Soul ?' (Jyoti Prasad Jain), 'Bhagawan Mahavir and Jainism' (P. C. Jain), 'Jain Authors and their Works' (Jyoti Prasad Jain), 'Parsvanath and Jainism' (Binod Kumar Tiwary)।

तुलसी प्रज्ञा ॥ अगस्त-सितम्बर १९८०

आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है, श्री मज्जयाचार्य रचित 'झीणी चरचा' (मुनि श्री नवरत्नमल), 'मुनि श्री खेतसीजी (सत्ययुगी)' (मुनि श्री नवरत्नमल), 'महावीर का अपरिग्रह : वर्तमान सन्दर्भों में' (डा० निजामुद्दीन), 'जयाचार्य शताब्दी और तुलसी निधि' (देवेन्द्रकुमार कर्णावट)।

अमर ॥ अक्टूबर १९८०

इस अंक में है 'जैन एवं बौद्ध धर्म में [illegible]' (म० राजेन्द्र जैन), [illegible] ([illegible])।

जैन भवन प्रकाशन

हिन्दी

१. अतिमुक्त— श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी ४.००

२. श्रमण संस्कृति की कविता—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी ३.००

३. चिदानन्द ग्रन्थावली—श्री केशरीचन्द धूपिया ५.००

४. भगवान महावीर : जीवन एवं उपदेश
—श्रीमती राजकुमारी बेगानी .५०

५. भगवान महावीर (एलबम्) १०.००

बांग्ला

१. सातटी जैन तीर्थ —श्रीगणेश ललवानी ७.००
२. अतिमुक्त —श्रीगणेश ललवानी ४.००
३. श्रमण संस्कृतिर कविता —श्रीगणेश ललवानी ७.००
४. भगवान महावीर ओ जैन धर्म —श्रीपूरणचाँद श्यामसुखा २.००

English

1. Bhagavati Sutra (Text with English Translation)
—Sri K. C. Lalwani
Vol. I (Satak 1-2) 40.00
Vol. II (Satak 3-6) 40 00
Vol. III (Satak 7-8) 50.00

2. The Temples of Satrunjaya
—James Burgess 50.00

3. Essence of Jainism—Sri P. C. Samsukha
tr. by Sri Ganesh Lalwani 1.50

4. Thus Sayeth Our Lord—Sri Ganesh Lalwani 1.50

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट : कलकत्ता-७००००७

Vol. IV No. 7 : Titthayara : November 1980
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001